पं. शारंगदेव द्वारा संगीत रत्नाकर में वर्णित वीणा वादन विधि

Dr. Gurdial Singh
Guest Lecturer (Instrumental), Department of Music, Panjab University, Chandigarh

ABSTRACT

Sangeet Ratnakar is one of the most important Sanskrit musicological text of India. Composed by Pt. Sharangadeva in 13th century, both Hindustani and Carnatic music traditions of Indian classical music regard it as a definitive text. Apart from important aspects of music it also describes the ancient and pre–13th century musical instruments of India into four class of musical instruments– chordophones (tantrivadya), aerophones (sushir vadya), membranophones (avnadh vadya) and idiophones (ghan vadya). All instuments under chordophones category known as veenas in that period. Different techniques, methods and playing styles of these intrumentswith detailed description have been mentioned in this great manuscript.

महर्षि भरत ने वीणा वादन विधि के अन्तर्गत धातुओं का वर्णन किया है, किन्तु 'हस्तव्यापारों' का उल्लेख नहीं किया, जबकि शारंगदेव ने 'व्यंजन धातु' का वर्णन करते हुए हस्तव्यापारों और वाद्यों का विवरण भी प्रस्तुत किया है। सम्भवतः व्यंजन धातु, जहाँ हाथ रखने की व्यवस्था पर अधिक बल दिया गया है, बजाए लघु–गुरू आदि मात्राओं के प्रयोग के इन्हीं हस्तव्यापारों का मूल स्त्रोत रहा हो।[1] शारंगदेव ने एकतन्त्री वीणा पर हस्तव्यापारों का विवेचन किया है। एकतन्त्री का वादन वाम हस्त की कम्रिका तथा दक्षिण हस्त की अंगुलियों द्वारा होता है।[2] वस्तुतः हाथों द्वारा की जाने वाली क्रिया ही 'हस्तव्यापार' कहलाती है। पं. शारंगदेव ने 65–87 श्लोक तक वीणा–वादन के तीन प्रकार के हस्त–व्यापार बताए हैं– दक्षिण हस्त–व्यापार, वाम हस्त–व्यापार तथा उभय हस्त–व्यापार।

दक्षिण हस्त–व्यापार

1 घात– मध्यमा अंगुली को तर्जनी से जोड़कर तर्जनी द्वारा तन्त्री पर आघात करने की क्रिया 'घात' है। यह आघात भीतर या बाहर किसी भी ओर हो सकता है।

सोमेश्वर ने इस प्रक्रिया को प्रसिद्ध 'पूत' नाम दिया है।

मध्यमामुपरि क्रान्तं तन्त्री संवाद्यते यदि।
तर्जन्या स तु विख्यातः पूतो नाम विचक्षणैः।।[3]

2 पात– केवल तर्जनी द्वारा तन्त्री पर आघात करने की प्रक्रिया 'पात' है। यह आघात बाहर की ओर होगा। वर्तमान समय में यह प्रक्रिया सितार में दायें हाथ की तर्जनी अँगुली द्वारा मिज़राब के माध्यम से 'रा' बोल के वादन में देखी जा सकती है।

3 संलेख– जब तर्जनी से अन्दर की ओर तन्त्री पर प्रहार या अन्तर्घात किया जाता है तब यह क्रिया 'संलेख' कहलाती है। सोमेश्वर ने इसे लेख भी कहा है–

तर्जन्यान्तः प्रहरणं स लेखः परिकीर्तितः।।[1]

1 डॉ. इन्द्राणी चक्रवर्ती, संगीत मंजूषा, पृ० 148
2 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ० 257
3 सोमेश्वर, मानसोल्लास, श्लोक संख्या 624

यह प्रक्रिया सितार में 'दा' बोल के निकास के अनुरूप ही है।

4 उल्लेख– मध्यमा के द्वारा अन्दर की ओर तन्त्री पर आघात करना 'उल्लेख' है। यह प्रक्रिया रूद्रवीणा के 'दा' आघात के अनुरूप रही होगी।

5 अवलेख– मध्यमा के द्वारा तन्त्री पर बाहर की ओर आघात करना 'अवलेख' है।

सिंहभूपाल द्वारा कुछ मतान्तर की भी चर्चा की गई है– एक–दूसरे से संश्लिष्ट अंगुली से उल्लेख और अवलेख (संलेख और अवलेख) करना चाहिए, ऐसे कुछ आचार्य कहते हैं। वहीं विकल्प से सब अंगुलियों द्वारा तीन या दो के द्वारा उल्लेख और अवलेख (संलेख और अवलेख)करना चाहिए। उन दोनों उल्लेख और अवलेख के (संलेख और अवलेख) क्रम से अन्दर और बाहर मुख पर घात, उल्लेख में संलेख अन्तर्मुख, अवलेख में बहिर्मुख ऐसा अन्य आचार्य कहते हैं। यही मतान्तर से उल्लेख और अवलेख (संलेख और अवलेख)ही अवलेख है।[2]

6 भ्रमर– चारों अंगुलियों से द्रुत अन्तर्घात करना 'भ्रमर' है।

7 संधित– मध्यमा और अनामिका के द्वारा तन्त्री पर होने वाला बहिर्घात 'संधित' है। श्री के. वासुदेव शास्त्री ने मध्यमा और अंगूठे को बाहर रख कर बजाना 'संधित' कहा है।[3]

8 छिन्न–शारंगदेव के अनुसार तर्जनी के पास में चिपकी हुई अनामिका के द्वारा बाहर की तरफ आघात करना 'छिन्न' है। पार्श्वदेव के अनुसार तर्जनी के पार्श्व में संलग्न तन्त्री पर जब अनामिका द्वारा बहिर्घात होता है, तब 'छिन्न' होता है। आज भी कुछ तन्त्री वाद्य जैसे रूद्र वीणा तथा सुरबहार में तृतीय अंगुली अर्थात् अनामिका का प्रयोग होता देखते हैं परन्तु आघात अन्दर की ओर होता है।[4]

9 नखकर्तरी–शारंगदेव के अनुसार चारों अँगुलियों के नखों द्वारा क्रमशः शीघ्रतापूर्वक आघात करना 'नखकर्तरी' है। पार्श्वदेव ने उभयहस्तके अन्तर्गत् नखकर्तरी का वर्णन किया है और दाहिने हाथ द्वारा क्रिया करने को कहा है।

वाम हस्त व्यापार

वाम हस्त में गृहीत 'कम्रिका' या 'सारणा' को बजाने की क्रिया वाम हस्त व्यापार है। ये दो प्रकार के हैं।

1 स्फुरित– सारणा (कम्रिका) तंत्री की पीठ से लगी हुई कंपन करते रहने की क्रिया 'स्फुरित' है। किसी के अनुसार कंपन समय तंत्री केपिछले भाग का स्पर्श करना 'स्फुरित' है। यह व्याख्या ठीक नहीं है क्योंकि शारंगदेव ने स्वयं कहा है– 'कम्रिका तत्क्रियाचोक्ता सारणा', सिंहभूपाल ने इसकी टीका की है– 'वादन वेणु–दंड रूप कम्रिका तस्याः क्रिया च सारणेत्यच्यते'। अतः यहाँ भी सारणा का अर्थ–क्रिया से न लेकर कम्रिका से लेना चाहिए।[5]

1 सोमेश्वर, मानसोल्लास, श्लोक संख्या 625
2 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ० 258
3 के. वासुदेव शास्त्री, संगीत शास्त्र, पृ० 256
4 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ० 258, 259
5 डॉ. इन्द्राणी चक्रवर्ती, संगीत मंजूषा, पृ० 150

डॉ. लालमणि मिश्र के अनुसार, ''स्वर कम्प के लिए बायें हाथ की अंगुली तार पर रखकर इधर–उधर हिलाने को स्फुरित कहते हैं। आजकल इसे ज़मज़मा कहते हैं।''[1]

2 खसित– सारणा के द्वारा बार–बार तंत्री पर घर्षण किया जाए तो 'खसित' है। इस क्रिया को घसीट तथा सूत के अनुरूप माना जा सकता है।[2] के. वासुदेव शास्त्री ने तन्त्री से हाथ उठाकर घर्षण कर 'सारणा' करने को कहा है।[3] डॉ. लालमणि मिश्र के अनुसार, 'जब बायें हाथ की अँगुली तार पर बार–बार घिसी जाती है तब उसे 'खसित' कहते है।[4]

डॉ. इन्द्राणी चक्रवर्ती के मतानुसार स्फुरित के स्थान पर खसित को 'ज़मज़मा' जैसी क्रिया समझना चाहिए तथा स्फुरित को कम्पन या गमक (आधुनिक)।[5]

उभय हस्त–व्यापार

दक्षिण व वाम, दोनों हस्तों की क्रिया जब एक साथ या क्रमशः होती रहे, तो वह 'उभय हस्त–व्यापार' है। शारंगदेव, सोमेश्वर व पार्श्वदेव सभी ने उभय हस्त–व्यापार बताए हैं। परन्तु उनके क्रम में अन्तर है।[6] शारंगदेव ने तेरह उभय हस्त–व्यापार कहे हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है–

1 घोष– अंगुष्ठ तन्त्री के पार्श्व में संलग्न तथा अन्य अंगुलियाँ कर्तरीवत् हनन करें तथा वामहस्त में कनिष्ठा में स्थित अथवा सारणा से तन्त्री पर आघात करें तब 'घोष' है। पार्श्वदेव ने भी इसी प्रकार की क्रिया बताई है।[7] सोमेश्वर ने कर्तरीवत् आघात को माना किया है।

अंगुष्ठपार्श्वसंस्पृष्टा कर्तरी च न (वच्च) हन्यते।
कनिष्ठा सारणाभ्यां च (वा) द्वाभ्यां निर्घोष उच्चयते।।[8]

सोमेश्वर तथा पार्श्वदेव दोनों ने इस क्रिया को निर्घोष कहा है।

2 रेफ– जब दक्षिण हस्त की अनामिका के द्वारा अन्दर की ओर आघात से एवं वामहस्त की मध्यमा अंगुली द्वारा बाहर की तरफ आघात किया जाए तो वैणिकों द्वारा 'रेफ' होता है।

डॉ. लालमणि मिश्र ने दाहिने हाथ की अनामिका का नखतार के नीचे तथा बायें हाथ की मध्यमा ऊपर से रखकर तार बजाने को रेफ कहा है। इस प्रक्रिया से रकार उत्पन्न होता है।[9]

3 बिन्दु– दक्षिण हस्त की अनामिका से बाहर की ओर आघात किया जाए तथा उससे उत्पन्न होने वाली ध्वनि को वाम हस्त की तर्जनी द्वारा धरण किया जाए, तो वह 'बिन्दु' है। डॉ. लालमणि मिश्र के अनुसार इससे 'गंकार' ध्वनि उत्पन्न होती है।10

4 कर्तरी– दोनों हाथों की चारों अंगुलियों के द्वारा, क्रमशः बाहर की ओर शीघ्रता से प्रहार 'कर्तरी' है।

---

1 डॉ. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ० 82
2 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ० 262
3 के. वासुदेव शास्त्री, संगीत शास्त्र, पृ० 256
4 डॉ. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ० 82
5 डॉ. इन्द्राणी चक्रवर्ती, संगीत मंजूषा, पृ० 151
6 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ० 259
7 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ० 259
8 सोमेश्वर, मानसोल्लास, श्लोक सं० 663
9 डॉ. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ० 82
10 डॉ. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ० 82

5 अर्द्धकर्तरी– जब दक्षिण हस्त कर्तरी की भाँति हो और वाम हस्त से सारणा या कम्रिका द्वारा तन्त्री पर आघात हो तो वह अर्द्धकर्तरी है।

6 निष्कोटित– जब सारणा या कम्रिका का परित्याग करके तर्जनी द्वारा तन्त्री पर आघात किया जाए, तब वह क्रिया 'निष्कोटित' है।

डॉ. लालमणि मिश्र ने दाहिने हाथ की तर्जनी से तार बजाते हुए बायें हाथ की अँगुली से तार–दबाकर सरकाने को निष्कोटित कहा है।1

7 स्खलित– वाम हस्त में धृत सारणा–क्रिया 'उत्क्षिप्ता' के समान करनी चाहिए। चतुर्विध सारणा में 'उत्क्षिप्ता' एक प्रकार है। कम्रा तंत्री के साथ जुड़ी है, इसे उठाकर अपने पूर्व–स्थान को त्यागकर उससे दूर के स्थान पर तंत्री को उछालकर पुनः उस पर सारणा को पात करने की क्रिया 'उत्क्षिप्त' है। 'स्खलित' में 'उत्क्षिप्त' सारणा क्रिया वाम हस्त द्वारा द्रुत वेग से करनी चाहिए तथा दक्षिण हस्त की चार अँगुलियों से कर्तरीवत् हनन करना चाहिए।2 यह प्रक्रिया कण अथवा कृन्तन के बजाने की प्रक्रिया से मिलती–जुलती है।3

8 शुकवक्त्र– दोनों हाथों की तर्जनी और अंगुष्ठ के आग्रभाग से तन्त्री का घर्षण होता है तब 'शुकवक्त्र' हस्त होता है। डॉ. लालमणि मिश्र ने बायें हाथ की तर्जनी से तार छेड़ने को 'शुकवक्त्र' कहा है।4

9 मूर्च्छना– तन्त्री पर उद्वेष्ट तथा परिवर्त क्रिया के द्वारा दक्षिण हस्त को घुमाना व वाम हस्त से द्रुत गति से कम्रा द्वारा सारणा क्रिया करना 'मूर्च्छना' है। सिंहभूपाल ने उद्वेष्ट और परिवर्त की क्रिया को इस प्रकार स्पष्ट किया है–

दक्षिणे दक्षिणहस्ते तन्त्र्या उद्वेष्टपरिवर्ताभ्यां।
वामदक्षिणगमित्वेन भ्राम्यति सति।।[5]

यहाँ सिंह भूपाल ने 'उद्वेष्ट और परिवर्त' का अर्थ वाम और दक्षिण की ओर तन्त्री घुमाना बताया है।

पार्श्वदेव ने इस क्रिया को इस प्रकार बताया है– 'परिवर्त' दो प्रकार का है–'तर्जन्याद्य' और 'कनिष्ठाद्य'। पार्श्व के द्वारा उन दोनों के स्पर्श से भ्रमण होने और करके रेचित होने पर द्रुत गति से कम्रिका स्वर स्थान पर पहुँचती है, तो यह कर व्यापार 'मूर्च्छना' कहलाता है।[6]

सम्पूर्ण हाथ को लपेटकर आघात करना 'उद्वेष्ट' है तथा दो अँगुलियों को अदल–बदल कर घुमाते हुए आघात करना 'परिवर्त' है। ऐसी क्रिया से जब दक्षिण हस्त भ्रमण करे एवं वामहस्त से कम्रा द्वारा 'कम्पित सारणा' द्रुत वेग से करें, तो 'मूर्च्छना' है।[7]

---

1 डॉ. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य,पृ० 83
2 डॉ. इन्द्राणी चक्रवर्ती, संगीत मंजूषा, पृ० 151
3 डॉ. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ० 83
4 डॉ. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ० 83
5 सिंहभूपाल, संगीत रत्नाकर टीका, 6/84
6 पार्श्वदेव, संगीत समयसार, 6/49–50
7 डॉ. इन्द्राणी चक्रवर्ती, संगीत मंजूषा, पृ० 152

10. तल हस्त–दक्षिण हस्त के तल अर्थात् हथेली से तन्त्री पर आघात किया जाए और वाम हस्त की तर्जनी से तार का स्पर्श किया जाए तो 'तल हस्त' व्यापार है। सोमेश्वर ने भी इसी प्रकार करने को कहा है। पार्श्वदेव ने 'तलहस्त' व्यापार का उल्लेख नहीं किया है।[1]

11. अर्धचन्द्र– अंगुष्ठ व कनिष्ठा द्वारा तन्त्री का संयुक्त स्पर्श 'अर्धचन्द्र' है। शारंगदेव ने इस व्यापार में दक्षिण व वामहस्त का उल्लेख नहीं किया है।[2] सोमेश्वर ने इस प्रक्रिया को इस प्रकार कहा है–

चतस्रः संहता यत्रा कुंचितोऽड•गष्ठक्स्तले।
कनिष्ठा तर्जनीस्पर्शस्तन्त्रयाश्चेत्पार्श्वतो भवेत्।।
सम्प्रसार इति ख्यातस्त्वर्द्धच्च(श्रच)न्द्रकरः परः।
कनष्ठिाड•गष्ठसं स्पर्शाद् दृश्यते वाद्यकर्मणि।।[3]

अर्थात्–चारों अंगुलियों द्वारा आघात और अंगुष्ठ तल को कुंचित, कनिष्ठा और तर्जनी का पार्श्व तन्त्री द्वारा स्पर्श एंव सम्प्रचार 'अर्धचन्द्रकर' कहलाता है।

डॉ. लालमणि मिश्र ने दाहिने हाथ से तार बजाकर बायें हाथ के अंगूठे तथा कनिष्ठा से उसे पकड़ लेने को 'अर्धचन्द्र' कहा है।[4]

12. प्रसारक–दक्षिण हस्त तल में अंगुष्ठ 'कुंचित' हो व चार अँगुलियों से संघात हो तथा वाम हस्त की कनिष्ठा व तर्जनी के पार्श्व भाग से तन्त्री का स्पर्श हो तो 'प्रसारक' है।

13. कुहर–दक्षिणहस्त के अंगूठे सहित चारों अँगुलियां कुछ अल्प रूप में कुंचित हो तब कनिष्ठा और अंगुष्ठ के स्पर्श से 'कुहर' हस्त होता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि हाथ के विभिन्न हिस्सों व अँगुलियों से आघात करके वादन की विकसित परम्परा शारंगदेव के समय से प्रचलित रही है। शारंगदेव से पूर्व सोमेश्वर ने भी हस्त–व्यापारों का उल्लेख किया है। परन्तु स्पष्टता शारंगदेव द्वारा निरूपित वर्णन में है। उसी के साथ यह उस काल की वादन क्रिया का विकास भी दिग्दर्शित करता है।

दशविध वाद्य

'एतद्धस्तसमायोगाद् वादनं वाद्यमुच्यते' अर्थात् हस्त–व्यापारों के समायोग या समावेश से जो वादन होता है वह 'वाद्य' कहलाता है। राणा कुम्भ के अनुसार भी त्रिप्रकार हस्त व्यापार का वादन विन्यास ही 'वाद्य' कहलाता है। आज हम वादन–क्रिया में जिसे 'बाज' कहते हैं, प्रायः उससे मिलता–जुलता यह वाद्य है।[5] है।[5] सोमेश्वर, पार्श्वदेव, शारंगदेव सभी ने वाद्य की चर्चा की है परन्तु स्पष्टता पार्श्वदेव एवं शारंगदेव के के वर्णन में मिलती है।[6]शारंगदेव ने दस प्रकारों का निरूपण किया है।

1 छन्द– बायें हाथ से बजाए जाने वाले 'खसित' और 'स्फुरित' हस्त–व्यापारों का जहाँ बारम्बार प्रयोग हो तथा उनके द्वारा तार स्थान को छूने पर उसे 'छन्द' कहा जाता है।

1 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ० 263
2 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ० 263
3 पार्श्वदेव, मानसोल्लास, श्लोक सृं० 641–642
4 डॉ. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ० 83
5 डॉ. इन्द्राणी चक्रवर्ती, संगीत मंजूषा, पृ० 153
6 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ० 265

डॉ. लालमणि मिश्र के अनुसार मन्द्र, मध्य तथा तार सप्तकों में वादन किया जाए तब उसे छन्द कहते हैं।[1] जबकि पार्श्वदेव और शारंगदेव ने तार स्थान में ही स्पर्श करने को कहा है।[2]

2. धरा–शारंगदेव के अनुसार स्खलित 'मूर्च्छना' के साथ कर्तरी रेफ, उल्लेख रेफ के समूह का जहाँ विन्यास को, वह 'धरा' है।[3]

सोमेश्वर ने उल्लेख और रेफ सहित वादन को 'धरा' कहा है।'[4]

शारंगदेव ने स्खलित व मूर्च्छना के साथ कर्तरी रेफ आदि को जोड़ा है और सोमेश्वर एवं पार्श्वदेव ने उत्क्षेप व परिवर्त को भी संयुक्त किया है।[5]

3. कैकुटी– 'शुकवक्त्र', 'स्फुरित', 'घोष' तथा 'अर्द्धकर्तरी', व्यापारों का क्रमशः एक के बाद एक का वादन करने से 'कैकुटी' है।

4. कंकाल– शारंगदेव स्फुरित, मूर्च्छना, नखकर्तरी, कर्तरी, अर्द्धकर्तरी आदि के द्वारा जब क्रमपूर्वक हाथ का व्यापार हो तब उसे 'कंकाल' कहते हैं।[6] पार्श्वदेव ने मूर्च्छित नामक स्फुरित और तीनों कर्तरियों से युक्त वाद्य को 'कंकाल' कहा है।[7]

5. वस्तु– कर्तरी, खसित तथा कुहर हस्त व्यापारों के साथ तार स्थान का प्रयोग हो तब उस वाद्य को वाद्यविदों ने 'वस्तु' कहा है।

6. द्रुत– क्रम से 'कर्तरी', 'खसित', 'कुहर', 'रेफ', 'भ्रमर,' 'घोष', आदि हस्त व्यापारों का प्रयोग 'द्रुत' वाद्य कहलाता है।

7 गजलीला– जहाँ 'मूर्च्छना' हस्त–व्यापार अधिक हो तत्पश्चात् 'स्फुरित', 'कर्तरी' तथा खसित प्रयुक्त हों, उसे 'गजलीला' वाद्य कहते हैं।

8. दण्डक– स्खलित मूर्च्छना, कर्तरी, रेफ व खसित के संयोग से 'दण्डक' वाद्य निर्मित होता है।

पार्श्वदेव के अनुसार निक्षिप्त तथा परिवर्त, रेफ सहित कर्तरी तथा खसित से युक्त वाद्य 'दण्डक' होता है।[8]

9. उपरिवाद्य–दोनों हाथों का नीचे तथा ऊपर अर्थात् दाहिने हाथ का ऊर्ध्व–संचालन ओर बायें हाथ का नीचे की ओर संचालन और उसके बाद दक्षिण हस्त द्वारा रेफ, वाम से कर्तरी, दक्षिण से निष्कोटित तथा वाम से तलहस्त काप्रयोग हो तो 'उपरिवाद्य' है।

पार्श्वदेव के अनुसार जहाँ रेफ, कर्तरी ओर निष्कोट के द्वारा ऊपर–नीचे गिरने वाले हस्त और हथेली के द्वारा वादन हो, वह उपरिवाद्य है।[1]

---

1 डॉ. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ० 83
2 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ० 266
3 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ० 266
4 उल्लेख रेफ सहितं धराख्यं वादने विदुः।। सोमेश्वर, मानसोल्लास, श्लोक सं० 646
5 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ० 266
6 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ० 266
7 पार्श्वदेव, संगीत समयसार, श्लोक सं० 19
8 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ०266

पार्श्वदेव ने दक्षिण एवं वाम हस्त के द्वारा कौन सा हस्त–व्यापार किया जाए, इसका स्पष्टीकरण नही किया है।[2]

डॉ. लालमणि मिश्र ने तार के ऊपरी भाग में रेफ तथा निचले भाग में कर्तरी, निष्कोटित, तलहस्त हों, उसे 'उपरिवाद्य' कहा है।[3]

10. पक्षिरूत– समस्त हस्त–व्यापारों के मिश्रण का फल है 'पक्षिरूत' वाद्य। दक्षिण हस्त के नो भेद, वाम हस्त के दो भेद एवं उभयहस्त के तेरह भेद इस वाद्य–विशेष के अन्तर्गत हैं। स्पष्ट ज्ञात होता है कि वाद्यों में यह श्रेष्ठ रूप रहा होगा, जिसमें सभी व्यापारों का समाहार है तथा वादक बजाने में पूर्ण स्वाधीन रहता होगा।[4]

उपर्युक्त अवतरणों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यहां 'वाद्य' हस्त व्यापारों के सम्मिश्रण से निर्मित हैं। किसी हस्तव्यापार में वाम हस्त व्यापारों का बाहुल्य है, तो किसी में दक्षिण का और किसी में उभय का, किन्तु अधिकांश वाद्य इन तीनों व्यापारों के मिश्रण के फलस्वरूप हैं। जैसे प्रथम वाद्य 'छन्द' में केवल वाम हस्त की प्रधानता है। उससे यह ना समझा जाए कि वहां केवल वाम हस्त काही प्रयोग किया जाता था, वरन् इन व्यापारों को बाहुल्य भेद के रूप में मानना उचित है। दक्षिण हस्त के आधार के बिना कोई वादन क्रिया सम्भव ही नहीं, अतः दक्षिण हस्त तो साधरण रूप से प्रयुक्त होगा ही, वाम हस्त क्रिया की भी बहुलता रहेगी। आज भी अनेक वैणिकों के वादन में कहीं वाम हस्त क्रियाओं का तथा कहीं दक्षिण हस्त क्रियाओं का प्राबल्य दिखाई पड़ता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मानसोल्लास, भाग–3, सोमेश्वर भूप, जी. के. श्रीगोण्डेकर (सम्पादक), ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1961

संगीत समयसार, पार्श्वदेव, आचार्य बृहस्पति (सम्पादक), श्री कुन्द कुन्द भारती, दिल्ली, संस्करण–1977

संगीत रत्नाकार, पं. शारंगदेव, प्रकाशक–दा अडयार लाइब्रेरी, मद्रास, प्रथम भाग–1943, द्वितीय भाग–1944, तृतीय भाग–1964

चक्रवर्ती डॉ. इन्द्राणी, संगीत मंजूषा, मित्तल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–1988

भार्गव डॉ. अंजना, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2002

मिश्र डॉ लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–2002

शास्त्री क वासुदेव, संगीत शास्त्र, प्रकाशन शाखा सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, संस्करण–1958

1 पार्श्वदेव, संगीत समयसार, श्लोक सं० 23
2 डॉ. अंजना भार्गव, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिन्तन, पृ० 267
3 डॉ. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, पृ० 84
4 डॉ. इन्द्राणी चक्रवर्ती, संगीत मंजूषा, पृ० 154